अहसास के धागे

काव्य संग्रह

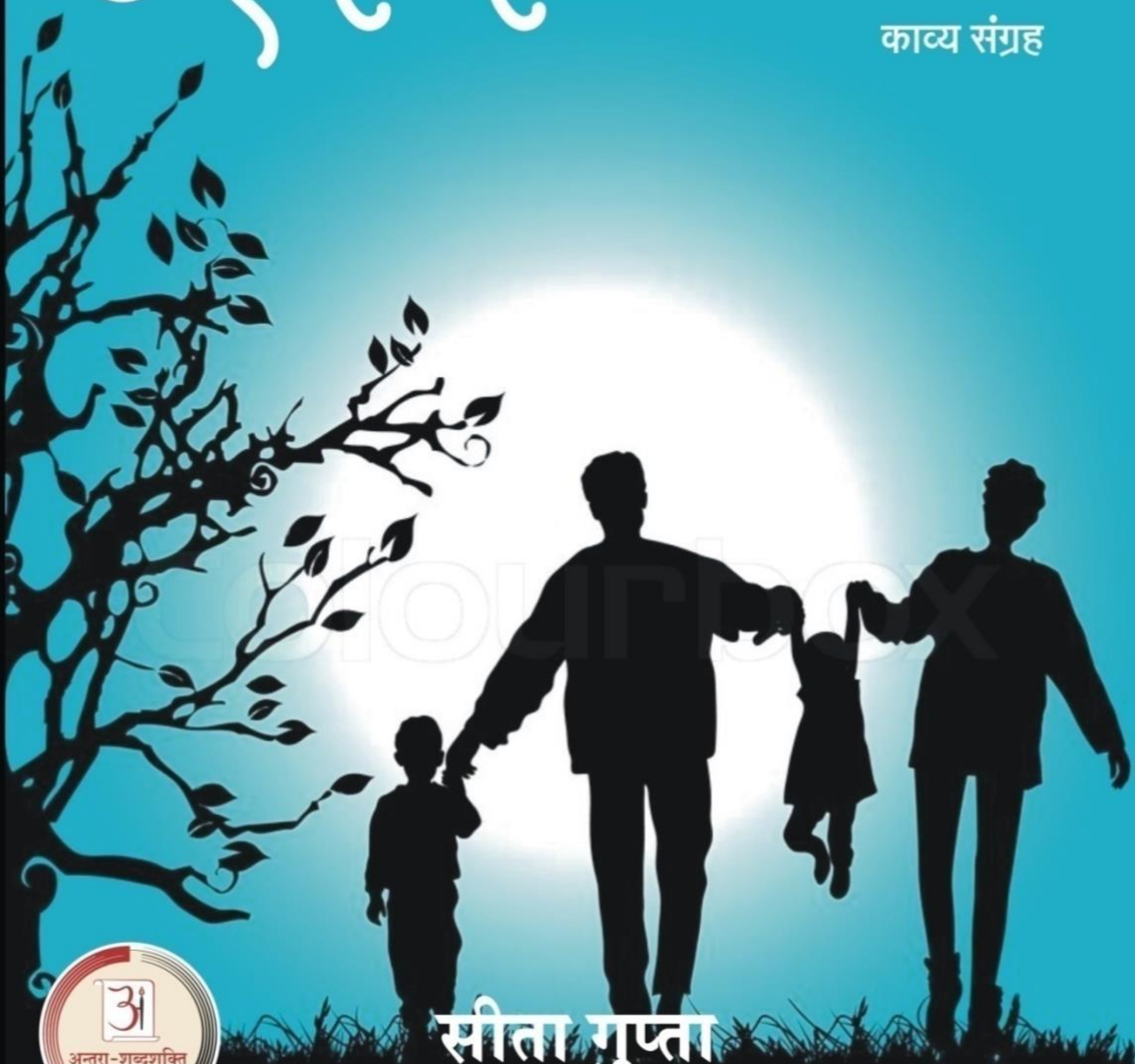

सीता गुप्ता

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

अहसास के धागे (काव्य संग्रह)

अहसास के धागे

(काव्य संग्रह)

सीता गुप्ता

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन

वारासिवनी, मध्यप्रदेश

978-93-5372-243-2

संपादक- डॉ. प्रीति समकित सुराना

आवरण चित्र एवं तकनीकी संपादक - संदीप कुमार सोनी, वारासिवनी

मुख्य कार्यालय- 15 नेहरू चौक, वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र.) 481331

मोबाईल- 9424765259, 9009465259

ईमेल- antrashabdshakti@gmail.com

वेबसाईट- www.antrashabdshakti

प्रथम संस्करण- 2020, सीता गुप्ता

मूल्य- 250.00 रूपये

मुद्रक- शैलू कम्प्युटर्स, वारासिवनी

THE BOOK WRITTEN BY SITA GUPTA

वैधानिक चेतावनीः- इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम में अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरूत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है। अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भूमिका

सीता गुप्ता के छटवें काव्य संग्रह **अहसास के धागे** में.. मेरी अनुजा की सहज अभिव्यक्ति बोधगम्य है, छंदबंधन इसमें बाधाकारी नहीं है, पूर्णतः छंद बंधन मुक्ति भी नहीं है, जो है वह निर्झरिणी सा सहज, हिरण सा उत्साह पूर्वक बढ़ता चला जाता है। कथ्य का प्रेषण ही मुख्य उद्देश्य है, अलंकार भारित नहीं अपितु उद्देश्य भारित काव्य रचना में सम-सामायिक घटनाओं पर चेतना जागृत करने वाली दृष्टि, सतत् निःसृत स्पष्ट परिलक्षित होती है।

पांडित्य प्रदर्शन उद्देश्य न होने से शब्द सुधी पाठक के हृदय में सहज ही उतरते चले जाते हैं। नारी और मातृसत्ता को सहज स्वीकार किया जाए, यह छटपटाहट पुनःपुनः दिखाई देती है, श्रेष्ठता नहीं अपितु समानता की आकांक्षा सर्वव्यापी है। "लोक कल्याण इसका अभीष्ट है यही काव्य रचना का सबसे सशक्त पक्ष है।"

प्रकृति के अनियंत्रित दोहन पर लेखनी के प्रचंड प्रहार दृष्टव्य हैं, मानव को स्वघाती परिणामों के लिए बारंबार सचेत किया गया है।

मानवीय मर्यादाओं का मनसा वाचा कर्मणा पालन करने में ही वर्तमान और भविष्य का श्रेष्ठतम, मानव समाज पा सकता है, अनेकानेक रचनाएँ इसे इंगित करने में सफल हैं। "मुखौटों की विद्रूपता पर कुठाराघात लेखनी का उत्कृष्ठ पक्ष है।"

मानव व्यष्ठि नहीं समष्ठि के लिए समर्पित हो, इसका अहसास रचनाओं के तानों-बानों में संनिहित है। "रचनाकार की

अनवेषणी दृष्टि जीवन के प्रत्येक पक्ष को भेदने और विवेचना करने में समर्थ है, यह सर्वत्र स्थापित है।"

संकटों और समस्याओं के इस युग में आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं से भी भीषण है, नैतिकता की समस्या, लेखनी ने इस पर लगातार मार्गदर्शन किया है।

मानव की सच्ची प्रगति परिवार एवं समाज के सुदृढ़ ताने-बाने में है, यह प्रेरणा अबाध रूप से दृष्टिगोचर है।

सर्वे भवन्तु सुखिन:
सर्वे सन्तु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद् दु:ख भागभवेत।

इस वैदिक उद्घोष को सार्थक करने में सुधीजनों को प्रेरित करने में यह रचनाएँ सफल हों।

शुभम् अस्तु।

प्रोफेसर डॉ.आजाद सरावगी
आर. डी. गार्डी मेडिकल कॉलेज
उज्जैन (म. प्र.)

आत्मकथ्य

चलायमान जीवन के चलते क्षणों में कभी-कभी कोई ऐसा पल भी आता है, जब शरीर तो चलायमान रहता है, पर वाणी नि:शब्द होने लगती है, मन मस्तिष्क दूर -दूर तक स्थिर सा होने लगता है।

ऐसी ही घटना मेरे साथ भी घटित हुई, जब मेरे दादा (पिता जी) के निधन पर मुझे उनके अंतिम दर्शन भी नसीब नहीं हुए और तब.... मुझे देश के अंदर विदेश जैसी दूरी का अहसास हुआ। तब मेरी आँखें तक मौन रहीं, वे आँसू जिनको गालों तक बह जाना था पलकों पर ही ठहर गए। मेरा मन मस्तिष्क एक बड़े से शून्य में कैद सा होने लगा, जबकि मैं एक कर्मचारी भी थी, अचानक ऐसी परिस्थिति में मानो साक्षात सरस्वती संग मेरे दादा की आत्मा ने ही मेरे हाथ में पुन: कलम थमा दी और तब उन दु:खद पलों में दो कविताओं का सृजन हो गया।

इस प्रकार अतीत के गर्त में खोए मेरे कवि रूप ने पुन: जन्म ले लिया और तबसे मैं निरंतर सुख-दुख की अनुभूति संग प्रकृति के सानिध्य को स्पर्श करती हुई समाज की सम-विषम परिस्थितियों को अपनी कलम के शब्द देकर सकारात्मक रचनाओं का सृजन करते चली आ रहीं हूँ। इसी बीच "अंतरा शब्दशक्ति" का स्नेह भरा सानिध्य मिल गया, जिससे सृजन में गति आई।

इस तरह ईश्वरीय कृपा संग आप सबके स्नेहाशीष से मैं अब तक चार सौ से अधिक कविताएँ लिखने के साथ-साथ अनेक विधा में गद्य लेखन कर चुकी हूँ, जो अनेक माध्यम से आपके सम्मुख पहुँच रहे हैं।

आज अपना ये छटवाँ काव्य संग्रह **अहसास के धागे** अपने **पूज्य दादा (पिता जी) को समर्पित करती हूँ**, जिनके आशीष से मुझे शिक्षिका संग कवि रूप में भी पहचान मिली।

सीता गुप्ता दुर्ग छ. ग.

पुस्तक के बारे में

सभी अपनों के प्यार, अपनत्व, ममत्व एवं आशीष की छाया संग अंतरा शब्दशक्ति के सहयोग से मैं अपने **छटवें** काव्य संग्रह **अहसास के धागे** के साथ आपके समक्ष हूँ।

निश्चय ही यह काव्य संग्रह आपको एक अनूठेपन का अहसास कराएगा, क्योंकि इसमें सरस्वती कृपा संग मेरे कवित्व की श्रम बूँदों की झलकियाँ हैं। जो आपको कहीं तो... वर्तमान परिस्थिति की विसंगत स्थिति के लिए सोचने को मजबूर करेगी, तो कहीं नारी की हर उम्र के लिए आज जो असुरक्षा बन गई है, उस दशा पर दिशा निकालने की बात कहेगी, तो.. अन्यत्र बेटी की महिमा मंडित करेगी।

इसके साथ ही प्रकृति की सानिध्यता को उजागर करती हुई, धरती पर पानी की सोचनीय स्थिति के समाधान को समझाती हुई रचना आपको मिलेगी, पतझड़ लाए बसंत बहार, सावन के अलावा, कटते पेड़ की कराह भी आपको यहाँ सुनाई पड़ेगी, जो आपको पर्यावरण बचाने के लिए मजबूत कदम देगी।

आगे वतन की मिट्टी की गंध सहित, सामाजिक परिवेश में रहते मानव की सम-विषम परिस्थिति के लिए अपने कर्तव्य-फर्ज, मानव-धर्म को प्रेरित करती हुई रचनाओं के दर्शन होंगे। जो आपको "हाथों की कीमत" बतलाती हुई "समर्पण" के भाव को उजागर करेगी।

इस प्रकार यह पुस्तक आपका प्यार पाकर निश्चय ही मुझ तक आपका स्नेह, आशीष पहुँचाएगी, जिससे मेरी लेखनी सुदृढ़ होगी। इसी आकांक्षा के साथ...

सीता गुप्ता दुर्ग छ. ग.

अनुक्रमणिका

1.	पिता एक मजबूत नींव	10
2.	ममता की मूरत	11
3.	पानी की महत्ता	12
4.	लेखा कर्म का नियति धर्मराज की	14
5.	बंद तोते की कहानी उसी की जबानी	15
6.	माँ कल और आज	17
7.	फर्ज	20
8.	घटा बनाम नारी	21
9.	बोझ नहीं वो बेटी है	23
10.	अमन	24
11.	अनोखा तराजू	25
12.	अस्तित्व	26
13.	वो भी है माँ	27
14.	चाहत के रंग प्रश्नोत्तरी के संग	28
15.	सच्चा हमराही	30
16.	एक नजर	31
17.	दर्द का रिश्ता	32
18.	कीमत बेटियों की	34
19.	निगाह-ए-हालात	35
20.	समीकरण	37
21.	देख तमाशा मुठ्ठी का	39

22.	सुरक्षा दीप	41
23.	समाधान	43
24.	अधिकारिणी	44
25.	जमीने वतन	46
26.	पतझड़ लाए बसंत बहार	47
27.	उसका अंकशास्त्र	49
28.	झरोखा	50
29.	पाती धरा की	52
30.	ये सावन है तो जीवन है	54
31.	सचेतन	56
32.	इंसानी हिम्मत	58
33.	अनोखे माली	60
34.	समय की पुकार	62
35.	अनमोल सिक्के	64
36.	संदेश एक अंकुर का	66
37.	कर्म बनाम भाग्य	68
38.	स्वभाव एक बीज अनेक	69
39.	चिकित्सक	70
40.	निर्वाहक	71
41.	कुछ पूरक ये अद्भुत से	72
42.	प्रश्न आर-पार का	73
43.	संदेश कमल का सीख लक्ष्मी की	75
44.	अहसास जोड़-तोड़ का	77

45.	अनुपम छबि	79
46.	आस के दीप	80
47.	विनय	81
48.	कृतज्ञता	82
49.	नसीहत	83
50.	चेतावनी नियति की	84
51.	मंजिल के द्वार क्षितिज के पार	86
52.	अरे! स्वार्थी मानव	88
53.	मानव-धर्म	90
54.	कीमत हाथों की	91
55.	आवाज मेरी कलम की	93
56.	नया सबेरा	95
57.	समर्पण	96

पिता- एक मजबूत नींव

सच है, दुनिया में माँ!
परिवार की केन्द्र बिंदु होती है।
पर.....
शाश्वत सत्य कि पिता!
परिवार की परिधि संग तना,
छतरी सा सुरक्षा कवच होता है।
स्व परिवार की खातिर वह!
स्वयं को तपाता है घिसता है,
और.....
सबके चेहरों पर खुशियों की चमक देता है।
इस तरह.....
पारिवारिक वृक्ष का....
पिता!
मुख्य तना होता है।
जिसकी शाखाओं पर,
खुशियों के झूले डलते हैं।
जहाँ किलकारियाँ गूँजती हैं।
बेटियाँ गुनगनाती हैं।
बेटे, हँसते-मुस्कुराते हैं।
इस तरह हर पिता!
अपनी बेटियों का मान होता है।
अपने बेटों की शान होता है।
और....
सबसे बड़ा शाश्वत सत्य कि पिता!
अपनी संतानों के सुरक्षित भविष्य की,
'एक मजबूत नींव होता है'

ममता की मूरत

वो कठोर निर्णय जब लेती,
चट्टानी ताकत बनती।
घर-परिवार की खुशी सँजोने,
पग-पग कंटक पर चलती।

अविरल अश्रु गंग-जमुन से,
काट होंठ को वो पीती।
अपने जीवन की उधड़न को,
स्वयं के हाथों है सिलती।

अपनी संतानों की खातिर,
कुशल सी माली वो बनती।
जीवन गति बहारें लाकर,
मेहनत फलीभूत करती।

देख सफलता संतानों की,
मन ही मन वो खुश होती।
कंटक चुन उनकी राहों से,
फूल बिछौने से देती।

नारियल सी जो सख्त है दिखती,
हृदया मोम सी वो होती।
ममता की मूरत वो जग में,
पूजित-वंदित है होती।

पानी की महत्ता

बूँद -बूँद से भरती गागर,
बूँद -बूँद से बहती धार।
धाराएँ जो बढ़तीं आगे,
सागर लेता फिर उछाल।

बढ़ते हुए प्रदूषण से अब,
हिमगिरि के गिर रहे द्वार।
जो न अभी संभाला उनको,
होगी फिर प्रकृति की मार।

अपने पैरों मार कुल्हाड़ी,
खुद का आज किया नुकसान।
पानी की थी बूँद कीमती,
उसको खूब किया बर्बाद।

कल होंठ जो प्यासे रह गए,
कहाँ खोजोगे मीठी धार।
पानी की हर बूँद बचालो,
आज ही नैया है मझधार।

नादानी तो कर दी मानव!
अपने पर कर लिया प्रहार।
पानी की हर बूँद बहाकर,
कर दी पतली मीठी धार।

खारा पानी खारा होगा,
कहाँ से होगी रस फुहार?
रिमझिम बूँद न बरसी कल तो!
कब? होगी जीवन की आस।

जल ही कल है जल जीवन है,
जल से ही जीवन की आस।
खाली गगरी रही जो कल जो,
कहाँ? बुझेगी फिर वो प्यास।

लेखा कर्म का, नियति धर्म राज की

धर्म राज ने भेजा एक दिन,
अपना एक सिपाही।
कर्मक्षेत्र में कौन निकम्मा,
करना जरा कार्यवाही।

औरों का जो खून चूसकर,
भरता रोज तिजोरी।
रिश्वत लेकर काम है करता,
बनता फिरे खिलाड़ी।

अबला-सबला की अस्मत का,
बना है जो व्यापारी।
पूजा-पाठ का ढोंग जो करता,
वार करे दुधारी।

ऐसे ढोंगी पाखंडी का,
लेखा तुम ले आओ।
मेरे आदेशों के बल पर,
उन पर गाज गिराओ।

देखे दुनिया सीख वो पाए,
कर्म नहीं जो सीधे।
मेरी नियति के बल पर देखो!
उन पर वार हैं तीखे।

पाप-पुण्य की गणना करते,
धर्मराज वहीं बैठे।
कर्म की ही तुम गति पाओगे,
सीख यही वे देते।

बंद तोते की कहानी उसी की जुबानी

तेरे प्यार की खातिर मानव,
पंखों को मैं भूल गया।
अंबर की तो बात ही छोड़ो,
छत तक उड़ना भूल गया।

तेरे भोजन के आगे मैं,
आमों डाली भूल गया।
तेरे दानों को खाकर मैं,
जाम कुतरना भूल गया।

आँगन उड़ान नहीं अब मेरी,
मंजिल अपनी भूल गया।
तेरी खुशियों की खातिर ही,
मै! पंछी हूँ भूल गया।

प्यार भरा परिवार देख मैं,
अपनी संतति भूल गया।
क्या शारीरिक सुख होता है,
अपनी गति मैं भूल गया।

मैं! पंछी हूँ सच है लेकिन,
क्षितिज उड़ान मैं भूल गया।
पिंजरे से बाहर हूँ लेकिन..
डाल पर जाना भूल गया।

तेरे प्यार की खातिर मानव!
मैं पंछीत्व को भूल गया।
पंख मिले हैं मुझको लेकिन,
मैं उड़ान अब भूल गया।

पर... सच कहता अब मैं मानव!
बिन पंखों सा पंछी हूँ।
तेरी खुशियों की खातिर मैं!
"खुली जेल का कैदी हूँ।"

माँ कल और आज

कितने रोशन थे वे जुगनू!
जिनके सहारे लोग ...
अमावस की अँधेरी रात में भी,
घर पहुँच जाया करते थे।
कितनी... प्रकाशवान थी वह लालटेन!
जिसके इर्द -गिर्द बैठ,
सभी भाई...
मुस्कुराते हुए पढ़ लिया करते थे।
कितने... मजे के थे वो दिन,
जब दादू काका के बगीचे से,
कच्ची अमियों को तोड़ लिया करते थे।
और.. देख लिए जाने पर,
चुपचाप.....
बुधिया काकी की गालियाँ भी,
हँसते हुए खा लेते थे।
कितने.. सुहावने थे वो पल!
जब बरसाती गड्ढों में,
कागज की नाव को,
आगे ही आगे बढ़ाते थे।
कितने.. मीठे थे वो क्षण,
जब एक साथ बैठ,
सब लोग...
भोजन कर लिया करते थे।
हाँ.....
"झगड़ा " होता था बचपन में कभी,

तो सिर्फ इस बात पर,
कि.....
"माँ मेरी है, माँ मेरी है, माँ मेरी है।
लेकिन...
आज की चकाचौंध ने तो,
चाँद को भी फीका कर दिया।
आज भौतिकता और आधुनिकता ने तो,
अपनों को भी दूर कर दिया।
आज रिश्ते नहीं,
सिर्फ दिखावे हैं।
क्योंकि... हर चेहरे पर,
चढ़े मुखौटे हैं।
आज स्वार्थ है,फरेब है जहाँ में,
मानवता-इंसानियत तो,
दूर कहीं दूर.....
बंद हो गई है किताबों में।
आज के रिश्ते तो.....
"हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और"
जैसे मुहावरे को ....
बाखूब निभा रहे हैं।
आज का दृश्य तो यह है कि....
जिस माँ के लिए,
कल तक जो सभी भाई,
यह कहकर लड़ा करते थे बचपन में ....
कि माँ मेरी है, माँ मेरी है, माँ मेरी है।
आज... अपने - अपने घरों से अँगुली दिखाकर कह रहे हैं,
कि.....

माँ तेरी है, माँ तेरी है, माँ तेरी है।
लेकिन.....
अब सवाल उठता है ये!
कि आखिर कोई....
उस माँ से भी तो पूछे,
कि वो किसकी है?
जिसे खड़ा कर दिया,
घरों से बाहर..
"सीमा रेखा के केन्द्र बिंदु पर,"
जहाँ खड़ी वह चुपचाप,
आँसू बहा रही है।
और अपने ही आँचल को मानो,
अपने ही आँसुओं से धो रही है।
वो कहती है मेरे लाल,
सुनो!
"मैं तो एक हथेली हूँ,
और तुम सब मेरी जुड़ी हुई अँगुलियाँ हो।"
मेरी ही दुआओं का असर है,
तुम्हारे जीवन में।
तभी तो तुम सब सही सलामत,
"खड़े हो"
सुनो मेरे लाल!
सदियों से इस धरती माँ के संग,
मुझ माँ का भी अस्तित्व जुड़ा हुआ है।
क्योंकि मैं.....
"तुम सबकी हूँ, तुम सबकी हूँ, तुम सबकी हूँ।"

फर्ज

प्राणी जगत में अपनेपन का,
फर्ज एक निभादो अब,
हो चिड़िया या कोई जानवर,
थोड़ा सा जल रख दो अब।

नहीं है पंखा नहीं है ए. सी.,
इन प्राणी की खातिर तो।
गरम हवा तो अब बढ़ रही,
धू-धू लपटें देती सी।

तुम इंसा अगर हो सच में,
कर लो एक भलाई अब।
तपी धूप अब सिर है चढ़ती,
रख दो गगरी भरके अब।

चाहे इंसा हो या प्राणी,
जल तो सबकी साँसे हैं।
पिला दिया जो जल सभी को,
हँसेगी सबकी आँखे तब।

हँसती आँखे बोले चेहरा,
तन सुंदर हो जाएगा।
प्राणी जगत में सारे अपने,
भाव भरा रस फैलेगा।

जीवन दिया ईश ने जो हमें,
वह सफल हो जाएगा।
औरों की खातिर जो जी लिया,
प्रभु कृपा वह पाएगा।

घटा बनाम नारी

जो न हो काली घटा तो,
पानी कभी न बरसे।
तब नादान मानव तू समझ ले,
अन्न एक न उपजे।

जो न हो नारी धरा पर,
वंश बेल न पनपे।
खुशियाँ क्या फिर इस धरा पर,
पक्षी तक न चहके।

बूँद-बूँद से जुड़कर मानव,
घटा काली हो जाती।
अपने काले रूप बरसकर,
धन्य-धन्य हो जाती।

नारी भी कर्तव्य बोध से,
कर्कश होती जाती।
पर.. अपने कर्तव्य बोध से,
पीछे कभी न हठती।

उजली बदली नहीं बरसती,
केवल धोखा देती।
शून्य में आँखे होती मानव,
हरियाली न होती।

ऐसे ही जो नारी होती,
दुनिया कभी न चलती।
खुशहाली तब दूर खड़ी रह,
द्वारे कभी न आती।

नारी और घटा की कीमत,
इंसा तू समझ ले!
दोनों से ही सारी प्रकृति,
किस्मत वश में कर ले।

वरना मानव पछताएगा,
जो रोएगी नारी।
नीर भरी बदली तब देगी,
विपदा बड़ी ही भारी।

कहीं बाढ़ अकाल पड़ेगा,
जो रोएगी नारी।
अश्रुपूरित नारी न हो,
सोच आज हो भारी।

मानव! तू मानव ही बन जा,
मत बन तू व्यभिचारी।
"नारी-बदली" एक है मानव,
इन्हीं से दुनियादारी।

बोझ नहीं वो बेटी है

सदियों से बेटी आज भी,
पराई होकर पराई नहीं रहती।
इसीलिए तो दूर रहकर भी,
अपनों की खबर रखती है।
बेटे कल थे जैसे वो सब,
क्या.. आज भी वैसे रह पा रहे!
क्या? सिर्फ बोझ ही होती है बेटी,
उसकी किलकारी का क्या कोई मोल नहीं होता।
क्या? सूनी कलाई पर किसी धागे का इंतजार नहीं होता,
क्या? बारात सजने पर बहनोई का,
कोई नेंग नहीं होता।
क्या? दरवाजे पर बहू के लिए,
बहन का दरवाजा रोकने का रस्म नहीं होता।
क्या? सिर्फ बेटों से ये दुनिया आगे बढ़ पाएगी!
जब नहीं....
तो फिर माँ बहन, बेटी -बहू के इस रूप को,
नकारने की सदियों से पहल क्यों????
"जिस बेटी में कोई बोझ नहीं,
उस बेटी के अस्तित्व को स्वीकारने में,
मन पर एक बोझ क्यों??
सदियों से चली आ रही ये दूरी,
आखिर! समाज कब मिटाएगा।
क्या ? पुरुष प्रधान समाज, सिर्फ!
पुरुषों से रह पाएगा।

अमन

जब रक्तिम आभा लिए हुए,
वो खून सभी में एक है।
जब सूरज-चंदा और तारे,
सबके लिए ही एक हैं।

नदियों की मीठी धारा भी,
जब सबके लिए ही एक है।
मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारे की,
जब सबकी धरती एक है।

तो आज क्यों है नींद उड़ी,
जो इक-दूजे के दुश्मन हैं।
है कौन सा वो भाव यहाँ,
जो अमन देश का छीनें है।

है कौन सी वो डगर यहाँ,
जो बीच राह में टूटी है।
क्या? दीवारों के बीच यहाँ,
कोई खुली हुई सी खिड़की है।

जो रात अँधेरे दुश्मन को,
धोखे से मौका देती है।
और अमन चैन की खुशियों को,
तोड़ने की कोशिश करती है।

सीमा पर प्रहरी अपने हैं,
डरने की कोई बात नहीं।
जब "रक्तिम-आभा" अपनी है,
तो सूर्योदय में देर नहीं।

अनोखा तराजू

आसमान से सूरज आया,
लेकर एक तराजू।
धूप-छाँव हैं पलड़े उसके,
अजब-गजब तराजू।

सुख-दुख की घड़ियाँ बतलाता,
मानो वही तराजू।
पाप-पुण्य की गणना करता,
जैसे वही तराजू।

अगले-पिछले कर्म गिनाता,
नितदिन वही तराजू।
राजा-रंक-फकीर कहाँ कब
जाने वही तराजू

नीति अनीति का फर्क दिखाता,
बिन बोले तराजू।
भोर दिवस की साँझ की संध्या,
कहता नित्य तराजू।

आज है पूनम काल अमावस,
यही कहता तराजू।
सारे जगत का तौल इसी में,
बोले रोज तराजू।

इन सबको ही सीख-समझ ले,
देता सीख तराजू।
तेरी कीमत कितनी मानव!
जाने वही तराजू।

अस्तित्व

एक बूँद अंबर की देखो,
कैसे मोती बन गई।
कुछ बूँदे आँसू की देखो,
आँचल को जो भिगो गईं।

मीठी बूँद जो मोती बन गई,
हार कंठ का बन गई।
आँसू की वो खारी बूँदे,
सब निरर्थक हो गईं।

प्रकृति अलग-अलग दोनों की,
इसलिए मंजिल अलग हुई।
एक चली थी अंबर से जो,
इंसा के संग सज गई।

आँखों से जो बही धरातल,
वह रसातल पहुँच गई।
प्रश्न? खड़ा अब फिर भी लेकिन!
क्यों? दोनों "बूँदे" कहलाईं।

दोनों के स्त्रोत अलग थे,
इसलिए दिशा अलग पाई।
एक बूँद जो भरती गागर,
उससे बहती धारा है।

आँसू की उस बूँद से देखो,
सारा सागर खारा है।
मीठी बूँद का इस जगत में,
खेल बड़ा ही न्यारा है।

वो भी है माँ

आदिशक्ति से लेकर, माँ के रूप को,
आराध्य सब मानते हो।
नमन करते हो उस रूप को,
दिल में जगह देते हो।
पर...
समाज ने जिसे दिल में रखने की,
भरी सभा में इजाजत दी।
सच्चे अर्थों में उसको!
क्या????
हर जगह सम्मान दे पाते हो!
घर सजाती है वो!
संवारती है सब कुछ,
बोई हुई फसल को लहलहाने में मदद करती है।
कंधे से कंधा मिलाकर,
हर वक्त जो साथ चला करती है।
मुस्कुराती हुई हँसकर,
जो आँसू भी पी जाती है।
"नारी" के रूप में कई जगह,
वो सजा पा जाती है।
सच्चे अर्थों में हर मुकाम पर....
क्या वो सम्मान पाती है?
दिल से स्वीकार करते हो जिसे,
होठों से कहने में क्यों सकुचाते हो?
किसी भी रूप में खड़ी है वो,
आखिर! उसके भी "माँ "के रूप को क्यों? भूल जाते हो।

चाहत के रंग प्रश्नोत्तरी के संग

विश्वास जगत में कैसा हो?
जैसे मिठास शहद की हो।

स्पर्श धरा पर कैसा हो?
जैसे गुलाब की पंखुड़ी हो।

आँखों में सपने कैसे हों?
जैसे दीप दिवाली अपने हों।

जीवन में खुशियाँ कैसी हों?
होली के सुंदर रंग सी हों।

अधरों मुस्काने कैसी हों?
जैसे मोहन की मुरली हो।

वो मित्र सखा सब कैसे हों?
जो सुख दुःख के भी साथी हों।

अपनत्व के रिश्ते कैसे हों?
जैसे अमृत की बूँदे हों।

हर घर की बेटी कैसी हो?
संस्कारी और निर्मात्री हो।

घर -घर का बेटा कैसा हो?
कर्तव्य का वो निर्वाहक हो।

ये जीवन पथ फिर कैसा हो?
इस सफर में सच्चा साथी हो।

इस जग का रूप फिर कैसा हो?
जीवन में बसंत बहार भी हो।

सच्चा हमराही

सच्चा हमराह जो होता है,
गुमराह नहीं वो करता है।
जीवन के कच्चे धागे में,
मजबूत गाँठ सी बनता है।

फिसलन कभी जो आती है,
वो हाथ बढ़ा पकड़ता है।
और संबल बनकर उस क्षण वो,
संग कदम-कदम भी चलता है।

सुख की घड़ियाँ जब आती हैं,
संग कहकहे खूब लगाता है।
जब अश्रु नयन से झरते हैं,
कंधे पर हाँथ वो रखता है।

जो भूल-भुलैया चौराहा,
जीवन के सफर में आता है।
वह पथ-प्रदर्शक बनकर के,
एक सही दिशा बतलाता है।

ऐसा सच्चा वो हमराही,
दिल में ही जगह तो पाता है।
वो पास रहे या दूर सही,
वो याद सदा ही रहता है।

एक नज़र

नहीं देखता सूरज कभी भी,
किसका आँगन बड़ा या छोटा।
वो तो बस जगत में आकर,
सबको अपनी धूप है देता।

नहीं देखता पेड़ कभी भी,
हिन्दू मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई।
वो तो अपनी छाया देता,
जो भी पास आता है भाई।

नदियाँ सबकी प्यास बुझाती,
चाहे नर हो या फिर नारी।
फिर भला बँटवारा कैसा,
जब "सृष्टि" की रचना सारी।

सड़क कभी नहीं यह सोचती,
कौन अमीर कौन गरीब।
वो तो सबको मंजिल देती,
चाहे राजा या फकीर।

फिर हम सब इंसानों ने ही,
क्यों दूरियाँ हैं बनाई।
नहीं सोचते हम सब ये क्यों,
सबमें खून "लाल" है भाई।

इस जग में भी एक ही रंग हो,
"खुशियों का वो रंग हो भाई"
एक ही खुदा है इस जगत का,
सारी उसकी है खुदाई।

दर्द का रिश्ता

कटता पेड़ करे पुकार, मत करो ये अत्याचार।
अंग-भंग मेरा तुम करके, मत करो अपना जीवन बरबाद।

क्या नहीं सुनना, कल फिर तुमको,
मीठे झरनों की, आवाज...।

क्या नहीं देखना, कल फिर तुमको,
रिमझिम वर्षा की, फुहार...।

क्या नहीं चाहिए, कल फिर तुमको,
खेत और अपने, खलिहान...।

क्या नहीं चाहिए, कल फिर तुमको,
बसंत और भौरों की, तान...।

क्या नहीं चाहिए, कल फिर तुमको।
मधुरस-फूलों की, मुस्कान...।

क्या नहीं चाहिए, कल फिर तुमको,
धूप सुनहरी, शीतल रात...।

क्या नहीं देखना, कल फिर तुमको।
चेहरों की सुंदर, मुस्कान....।

क्या नहीं देखना, कल फिर तुमको,
घर-आँगन में, नन्हें लाल...।

क्या नहीं देखना, कल फिर तुमको,
अपने आस-पास, इंसान...।

जब यही जरूरत सारी है तो!, मुझको क्यों? सताते हो,
मुझे काटकर अपने पैरों, क्यों कुल्हाड़ी मारते हो।

पढ़े लिखे इंसान अगर हो, मेरी कीमत को पहचान।
"हमसे ही है सारी प्रकृति", और इस धरती की है आन।

चाहे नीलगगन में उड़कर, कितनी उँची भरो उड़ान।
पर आराम जब चाहोगे तो, मेरी ही मिलेगी छाँव।

घर -आँगन मुझसे ही बसते, भोजन-पानी-कपड़े मिलते।
हर जरूरत में ही आखिर! हम तुम्हारे काम आते।

इतनी बात समझकर, फिर भी,
मुझको तुम क्यों? सता रहे हो।

अंग-भंग कर-करके मेरा, सामानों को सजा रहे हो।
कल जो इमारत गिर जाएगी, उसकी नींव क्यों खोद रहे हो।

"पर्यावरण" बिगाड़ करके, "प्रदूषण"क्यों बढ़ा रहे हो।
मुझे काट मानव! क्यों? आखिर, मौत के मुँह में जा रहे हो।।

कीमत बेटियों की

ममता के आँचल की कीमत हैं बेटियाँ,
अस्मत और लाज की परिभाषा हैं बेटियाँ।

भाई की कलाई पर राखी हैं बेटियाँ,
पिता की पगड़ी की शान हैं बेटियाँ।

ससुराल और मायके की सेतु हैं बेटियाँ,
परिवार की आँखों की नूर हैं बेटियाँ।

ओस की बूँदों सी सुंदर हैं बेटियाँ,
सितारों में चाँद सी खूबसूरत हैं बेटियाँ।

सूरज की चमक सी होती हैं बेटियाँ,
धरा से अंतरिक्ष तक अब पहुँची हैं बेटियाँ।

कुदरत की गोद में रौनक हैं बेटियाँ,
इस सारे जहाँ की अमानत हैं बेटियाँ।

इस धरा की गति की धुरी हैं बेटियाँ,
है नियति वहाँ जहाँ होती हैं बेटियाँ।

द्वार आएँगी खुशियाँ जो मुस्कुराएँगी बेटियाँ,
रहेगा संसार आबाद जब रहेंगी बेटियाँ।

निगाह-ए-हालात

इस जगत की चलती गाड़ी के,
पहिए की घूमती धुरी हूँ।
इस जगत का आखिर होगा क्या?
बस, इसी चिंता में रहती हूँ।

कभी रानी हूँ कभी दासी हूँ,
कभी घर में हूँ कभी वन में हूँ।
कभी महलों में कभी सड़कों पर,
अपने अस्तित्व को ढोती हूँ।

इस जगत में मेरा रूप है क्या?
खुद से सवाल ये करती हूँ।
बस, औरों की खातिर हरदम,
ये साँस रोज क्यूँ लेती हूँ !

है अपना वजूद वो आज कहाँ?
जो दुर्गा सा कभी पुजता था।
माँ मरियम की उस मूरत में,
मेरा अस्तित्व जो दिखता था।

क्यूँ तार-तार कर रहें अब,
मेरे अस्तित्व के वसनों को।
क्यों कुछ पुरुष अब कुचल रहे,
उम्रों के हर उस पलड़े को।

क्यों कोख वो अब यूँ लजा रहे,
"अपनी ममता की मूरत की"
क्यूँ भूल रहा है अभिमानी,
मेरी संसार जरूरत की।

जो मिट गई मैं सदा के लिए,
तू! जन्म कहाँ से पाएगा?
इस दुनिया का फिर खेल खतम,
उस दिन उस पल हो जाएगा।

जो निगाह पाई मानव तूने,
उन आँखों का सदुपयोग कर।
जो हृदय मिला है ईश से,
उस "हृदय " से तू विचार कर!

बदले जमाने के अक्स जो,
"उन अक्सों पर तू निगाह कर"
जो बदल जाएँ हालात सब,
ऐसा मानव तू कर्म कर!

समीकरण

नहीं होता कोई खौफ घास को,
तूफानी मंजर में जड़ से उखड़ जाने का।
क्योंकि एहसास होता है उसे,
धरातल से जुड़े होने का।

नेस्तनाबूद हो जाता है कभी-कभी,
वह विशाल वृक्ष तूफानी मंजर में,
जो आकाश को छूने की चाहत में,
धरातल से बहुत दूर हो जाता है।

नहीं टूटते ख्वाब उनके,
जो आधे पेट खाकर।
झोपड़ी में पैर सिकोड़कर,
चुपचाप सो जाते हैं।

हकीकत में टूट जाते हैं मीठे स्वप्न उनके!
जो विलासिता से सजे,
संगीतमय-शयनकक्ष के,
बिस्तर पर सोते हैं।

होता है स्वाद भोजन में उनके!
जिनके हाथ पर,
अचार संग रोटी,
उनके बच्चों के हाथ से रखी जाती है।

हो जाती है कभी -कभी बेस्वाद उनकी,
व्यंजनों से सजी वह थाली!
जिनकी औलाद झूठा दिलासा देकर,
देर रात तक घरों से बाहर रहती है।

दुखी नहीं होता कई बार वह!
जो मंदिर के सामने सड़क पर।
एक हथेली खोल,
चुपचाप खड़ा रहता है।

दुखी होता है प्रायः वह!
जो भगवान की मूरत के सामने।
आँखें झुकाए विनती करता,
झोली फैलाए खड़ा रहता है।

दिखते हैं दर्द जमाने को उनके!
जिसका सब कुछ उजागर दिखता है।
दिखता है अक्स वहाँ जिंदगी का,
और भाग्य का खेल वहाँ दिखता है।

"नहीं दिखता जमाने को नासूर-ए-दर्द उनका!
जो पर्दों से घर को छुपाते हैं।"
क्योंकि बहुत बड़ा सच है यारो वहाँ,
"उनके मखमल में मखमल का ही पैबंद जो होता है।"

देख तमाशा मुट्ठी का

बंद मुठ्ठी के संग है आया,
इंसा तू! इस जग में।

इस मुठ्ठी के कारण ही तो,
सारे बंधन तुझमे।

इस मुठ्ठी के खेल निराले,
देखे इस जगत ने।

राजा-रंक-फकीर सभी हैं,
इस मुठ्ठी के वश में।

थोड़ी मुठ्ठी खुली जब तेरी,
इक अँगुली आई पकड़ में।

ठुमक-ठुमक तू चलना सीखा,
घर-आँगन गलियों में।

इस मुठ्ठी ने कलम जो पाई,
ज्ञान मिला पल-पल में।

मुठ्ठी ने जो दौलत पाई,
साख मिली उस क्षण में।

मुठ्ठी खोल जो कर्म किए तो,
"ईश-कृपा" हुई घर में।

पर मुठ्ठी जो फिर बंधी तो....
क्षणभंगुर कुछ पल में।

मुठ्ठी से ही बँधे हुए हैं सारे रिश्ते नाते,
बंद मुठ्ठी के अंदर ही तो रिश्तों के लिफाफे।

बिना टिकट के ये लिफाफे!
सब अपनों के दिल में।

मुठ्ठी का ही खेल है प्यारे,
सारा इस जगत में।

सुरक्षा दीप

मस्त लहरों पर बढ़ते हुए,
नाविक हो तुम!
एक बड़ी सी नैया के,
साहिल हो तुम!

है "सुरक्षा" की पतवार में,
बड़ा ही दम।
कल को गलती भरा,
न उठाना कदम।

राह तकती हैं आँखें,
उस घूंघट की आड़।
पलकें बिछाते हैं बच्चे,
बाट जोहती है माँ।

बस.. जलता रहे यूँ,
"सुरक्षा-दीया"
न टूटे घरौंदा...
न मिटे दुनिया।

बेशकीमती है जीवन,
बहुत ही बड़ा।

न टूटे कोई आस,
न टूटें कड़ा।

बस..खनकती रहें
चूड़ियाँ यूँ ही।
मुस्कुराते रहें होंठ,
बस यूँ ही।

न उदासी कहीं हो,
न फीके त्यौहार।
न टूटें लड़ी,
न बिखरें वो हार!

इस जीवन की नैया,
बस.. चलती रहे।
ये "सुरक्षा का दीपक"
यूँ ही जलता रहे।

है "सुरक्षा का दीपक"
बड़ा ही मजबूत।
जो चल रहा जीवन!
ये उसका सबूत।।

समाधान

देख रसातल चली न जाएँ,
सारी जल की बूँदें।
"समाधान" तू! कर ले मानव,
बैठ न आँखें मूँदें।

कंक्रीटों के इस जंगल में,
थोड़ी कमी तो कर ले।
वसुंधरा को साँसे मिल जाएँ,
वो जतन तू! कर ले।

खेत और खलिहानों की,
भूमि को आज बचाले।
कल की "क्षुधा "मिटाने खातिर,
आज ही कदम उठाले।

आ रहीं हैं बरखा रानी,
स्वागत उनका कर ले।
पोखर -ताल -तलैयाँ घर में,
बूँद -बूँद तू! भर ले।

आने वाली संतानों की,
"खुशी" सुरक्षित कर ले।
भूमि, जल और रोटी का तू!
"समाधान" अब कर ले।

अधिकारिणी

पीहर की मैं राजकुमारी,
बाद में मैं एक नारी हूँ।

राखी की कीमत है मुझसे,
भैया को मैं प्यारी हूँ।

माँ की आँखों की मैं मोती,
उन्हें जान से प्यारी हूँ।

संस्कारी बेटी मैं,
पापा की राजदुलारी हूँ।

त्याग-दया-ममता सब मुझमें,
क्योंकि मैं एक नारी हूँ।

धैर्य धरा सा तपन सूर्य सा,
मैं तेजस्विनी नारी हूँ।

अत्याचार मैं नहीं सहूँगी,
मैं एक सबला नारी हूँ।

ऊँचाई से नहीं डरूँगी,
मैं दृढ़निश्चयी नारी हूँ।

माँ बहना भार्या रूप में,
मैं सम्मानित नारी हूँ।

कल तक थी भले गुड़िया रानी,
आज पूर्णतः नारी हूँ।

मेरे मान को हरदम रक्खो !
जिसकी मैं "अधिकारी" हूँ।

जमीने वतन

दूर अंबर से मिलने को जाती जमीं।
जब आते हैं भूचाल तो कांपे जमीं।।

पड़ती रिमझिम फुहारें खुश होती जमीं।
लहलहायें जब खेत तो झूमे जमीं।।

पर आती हैं बाढ़ें तो रोती जमीं।
जब भी बहता लहू तब दुखती जमीं।।

बंद हो जाएँ आँखें जगह देती जमीं।
नई मिलती हैं साँसे झूले देती जमीं।।

हर हाल में आखिर है अपनी जमीं।
न तुम्हारी जमीं न हमारी जमीं।।

इसको करलो नमन ये है सबकी जमीं।
ये है अपने वतन की प्यारी जमीं।।

करके गलती कोई तुम न खोना जमीं।
दिये सहारा हम सबको हमारी जमीं।।

अपने भारत की भूमि है अपनी जमीं।
बना दो इसको "चमन "तो महके जमीं।।

पतझड़ लाए बसंत बहार

पतझड़ होता देखकर भंवरा,
कितना चुप हो जाता है,
गिरती पंखुड़ी फूल देखकर,
अश्रुपूरित होता है।

द्वार-द्वार पर दस्तक देकर,
मानो अलख जगाता है।
रस मकरंद को पीने को फिर,
उसका मन ललचाता है।

गुंजित हो उसकी स्वर लहरी,
आसमान को छूती है।
तब मानो हर डाल पर कोंपल,
लाल-लाल आ जाती हैं।

आमों पर बौरें आती हैं,
कोयल गीत सुनाती हैं।
पीली सरसों फूल -फूल कर,
नित कालीन बिछाती है।

"ऋतु-बसंत दूल्हे राजा का"
स्वागत कलियाँ करती हैं।
सुरभि भरे सुमन से देखो,
हर बगिया सज जाती है।

मदमाता तब भंवरा आता,
मदमस्त पवन फिर गाता है।
कली-कली और फूल-फूल का,
आलिंगन वो करता है।

झूम-झूमकर मानव मन तब,
निशिदिन खुश हो जाता है,
बीते पतझड़ "बसंत" देखकर,
जीवन का सच पाता है।

उसका अंकशास्त्र

नहीं लगा सकता कोई भी!
सही हिसाब अंगुलियों पर।
उसके सुबह से लेकर देर रात तक,
किए जाने वाले कामों का।

करती है वह अनगिनत ही कार्य,
क्योंकि वह ....
परिवार के प्रति समर्पित,
एक सच्ची नारी है।

पर... लगाती है अपने मानस पटल पर,
वह! अंकगणतीय एक-एक हिसाब।
सबकी खुशियों का,
क्योंकि वही तो परिवार की धुरी है।

अंकशास्त्र के धन सा बढ़वाती है,
जिद करके दृढ़ता से।
भविष्य के लिए संचित धन को,
क्योंकि वही गृह स्वामिनी लक्ष्मी है।

लगाती है स्वयं की इच्छाओं के आगे शून्य,
ताकि सबकी खुशियों की पूर्ति में।
गुणित होकर शून्य पीछे लग सकें।
और हजार गुना उसके फर्ज को पूरा कर सकें।

"अनोखा है उसके जीवन का अंकशास्त्र"
जो घटाता है घर-परिवार और समाज के द्वेष-बैर-ईर्ष्या आदि
कलुषित भावों को।
और लगाता है प्रेम की नई पौध,
क्योंकि वह नारी ही नहीं माली भी है।।

झरोखा

प्रात:कालीन बेला के कामों से निवृत्त हो,
भास्कर की तपिस में सुखा रही थी अपनी घनेरी लटों को।
कि दूर कहीं बजते गीत के एक बोल ने,
सामने लाकर खड़ा कर दिया तुम्हारे अक्स को।
शहद सी घुलने लगी कानों में,
और.. झंकृत करने लगे तुम्हारे मीठे बोल।
बस! फिर तन यहाँ रह गया और....
मन दूर कहीं अतीत की उस सुंदर छत पर पहुँच गया।
जहाँ बैठे होते थे हम सब!
रात के गहराते साये में,
झिलमिलाते तारों के प्रकाश में,
शीतल बयार का आनंद उठाते हुए गाते थे।
आजा सनम मधुर चाँदनी में हम.....
आज सनम भी हैं,
कभी-कभी मधुर चाँदनी भी होती है।
लेकिन.... फिर भी,
न जाने क्यों एक उदासी सी होती है।
सब कुछ भरा हुआ है फिर भी,
गागर रीती सी क्यूँ लगती है।
खुशियाँ हैं जहाँ भर की,

फिर भी होंठो पर लाली नहीं होती है।

मुस्कुराते हैं होंठ,

लेकिन... खिलखिलाहट नहीं होती।

शायद इसलिए कि...

इस आज में बीते कल सा,

कोई धूम मचाने वाला नहीं होता।

इस बड़प्पन के बीच....

कल का "बचपन" जो नहीं होता।

बस! होता है तो,

"कर्तव्यों का दरवाजा" और "यादों का झरोखा"

जिससे आकर चाहे जब,

मीठी यादों की शीतल पवन छू जाती है।

और.....

बचपन की सखियों की याद दिला जाती है।

पाती धरा की

काले मेघा सुनो जरा!
लो आज वही फिर कहती हूँ।
सदा-सदा से सदा ही तुमसे,
अभिसिंचित मैं होती हूँ।

औरों को देने की खातिर,
तुमसे ही तो लेती हूँ।
खेतों को फसलें देकर के,
नदी को धारा देती हूँ।

प्यासे नयन बदन मेरा प्यासा,
प्रिये निवेदन करती हूँ।
आ जाओ आलिंगन लेने,
आस लगाए बैठी हूँ।

रिमझिम सी बूँदों के रूप में,
प्रियतम अब तो आ जाओ।
मुझ धरा को सिंचित करने,
अमृत रस तुम बरसाओ।

गुजर-बसर हो जाए सबकी,
इतना सब कुछ दे जाओ।
जितनी जहाँ जरूरत जग को,
उतना वहाँ तुम दे जाओ।

लेकिन.. संग दामिनी लेकर,
मर्यादा में रहना तुम!
आस भरे दीपक की लौ को,
कहीं बुझा मत देना तुम!

मत बदनाम करना मुझे तुम,
मैं तुम्हारी प्रेयसी हूँ।
गुजर -बसर हो जाए मेरी भी,
राह तुम्हारी तकती हूँ।

तुमको पाकर ही तो प्रियतम,
सोए बीज जगाती हूँ।
अंकुरित कर प्रस्फुटन को देकर,
कानन को सजाती हूँ।

"पाती" पढ़ प्रियतम तुम मेरे,
धाराधर तुम आ जाओ।
गुजर-बसर हो जाए सभी की,
मुझको तुम सजा जाओ।

प्रकृति संग हमारा रिश्ता,
इसको फिर निभा जाओ।
काले मेघा पाती पढ़कर,
अमृत रस संग आ जाओ।।

ये सावन है तो जीवन है

आया सावन का ये महीना,
बादल ने खोला है टीना।
अब दूर भाग गया पसीना,
अब उत्साहों में फिर जीना।

अब बीज बन गए पौधे हैं,
डालों पर पड़ गए झूले हैं।
अब प्रकृति में हरियाली है,
गालों पर खुशी की लाली है।

नन्हें बच्चों के कंधों पर,
सज गए हैं स्कूली बस्ते।
उनके कदमों की थापों से,
बज उठे हैं जीवन के रस्ते।

सावन के गीतों की सरगम,
देती है खुशियों का आलम।
ये गीत दुखों पर हैं मरहम,
जो सुनेगा उसके छूटे गम।

ये सावन है तो जीवन है,
ये जीवन है तो हम सब हैं।

सावन ही राखी का बंधन,
सावन में आते याद सनम।

धरती से अंबर का रिश्ता,
इस सावन से ही जुड़ा हुआ।
देखो! वर्षा की धारा में,
है धरती अंबर जुड़ा हुआ।

इस धरती से उस अंबर तक,
हम भी तो आज जुड़ गए।
कल जंगल में हम रहते थे,
आज नील गगन में उड़ रहे।

ये सब कुछ दिया है सावन ने,
क्योंकि सावन से हरियाली।
ये हरियाली ही जीवन है।
इस जीवन से ही खुशहाली।।

सचेतन

सदियों से नारी ममता की,
मूरत तो मानी जाती है।
पर कुछ पुरुषों के दिलों में,
पैरों की जूती होती है।

नारी सम्मान की अधिकारी,
सबकी नजरों में होती है।
पर कहीं दहेज की वेदी पर,
नारी आहुति होती है।

नारी से रिश्ते हैं गहरे,
माँ, बहना, पत्नी होने पर।
पर नहीं सुरक्षित है नारी,
अब रात कालिमा बढ़ने पर।

गुड़ियाएँ क्या कन्याएँ क्या?
प्रोढ़ा भी अब चित्कार रही।
जब माँ का आँचल था सर पर,
तो.. व्यभिचार की ज्वाला क्यों धधक रही।

कहाँ भूल हुई और कमी हुई,
संस्कारों में कहाँ ढील हुई।

जो नहीं सुरक्षित नारी अब!
प्रकृति कहाँ कमजोर हुई?

ये प्रश्न था कल और अब भी है,
नारी की कहीं क्यों दुर्गति है।
जब नारी देवी लक्ष्मी है,
जब नारी ही सरस्वती है।

नौ रात्र के रूप में शक्ति है,
राधा के रूप में भक्ति है।
फिर पूज्या नारी की कहीं पर,
क्यों खूब दुर्गति होती है।

पर.. अति ना कर अब मानव तू!
मत नारी का अपमान करो।
वो राख भी तुम्हें कर सकती है,
मत चिंगारी उसे बनने दो।

सब आँखे मत अब बंद करो,
तुम नारी का सम्मान करो।
उसके रणचंडी रूप का तुम,
"मत धोखे से आव्हान करो।।

इंसानी हिम्मत

चल पड़ा था पगडंडी पर,
कदमे निशां बनाने को।
ले पतवार बढ़ा लहरों पर,
कश्ती पार लगाने को।

बन पथिक वो चला दूर तक,
मील का पत्थर बनने को।
पंछी जैसी उड़ा ऊँचाई,
नीलगगन को छूने को।

नई डगर थी राह कठिन थी,
कहीं नहीं कोई संबल था।
मन विश्वास का चप्पू था संग,
वो अनोखा मांझी था।

सागर ढूँढ़े द्वीप भी ढूँढ़े,
वह इंसा जज्बाती था।
राह-राह पर दिशा-दिशा पर,
खुद अपना वह साहिल था।

दुर्गम पहाड़ों में जाकर,
उसने परचम लहराए।

इस धरा से उस चंदा तक,
उसने पग फिर फैलाए।

फिर भी चाह नहीं हुई पूरी,
अंतरिक्ष तक जा पहुँचा है।
इसीलिए तो आज की दुनिया,
अँगुली पर समेटा है।

जन्म दिया था उसे ईश ने,
हिम्मत उसने दिखलाई।
इंसा होने की निशानी,
इस धरा पर दिखलाई।

सब प्राणी में इंसा ऊपर,
कृपा ईश ने दिखलाई।
इंसा की छबि भी तो आखिर,
प्रभु ने खुद थी अपनाई।।

अनोखे माली

नई पौध को स्वयं लगाकर,
माली सो नहीं पाता है।
नई कोंपल को देख-देखकर,
कितना खुश वो होता है।

सिंचन कर हाथों से अपने,
रखवाली वह करता है।
नन्हीं एक कली आने पर,
कितना खुश हो जाता है।

उस नन्हीं कली को अपने,
हाथों से सहलाता है।
फूल खिलेगा कब बगिया में,
इंतजार वह करता है।

पल -पल फिर वह राह देखता,
समय को वह पकड़ता है।
तब माली की उस बगिया से,
गुलदस्ता सज जाता है।

ये जीवन भी है एक बगिया,
मात -पिता इसके माली।
अपने ही परिवार की देखो!
कैसे करते रखवाली।

पल -पल अपने त्याग के बल से,
घर में लाते खुशहाली।
खुशहाली परिवार संजोती,
सजती सुंदर है थाली।

उस थाली को भरा देखकर,
खुश होते दोनों माली।
इनके गुलदस्तों से सजकर,
परिवार में बढ़ती खुशहाली।

एक धरा का सिंचन करता,
दो परिवार को सींचते हैं।
इस धरा पर ये ही तीनों!
"अनोखे माली" होते हैं।

इन तीनों माली से ही तो,
सुंदर सारी दुनिया है।
घर आँगन बगिया जो महके,
महके सारी दुनिया है।।

समय की पुकार

देख धरा से अंबर तक तू!
मानव? क्या? कर डाला।
भूमि पानी और हवा को,
"दूषित" ही कर डाला।

वसुंधरा का दम घुट रहा है,
कंक्रीटों के नीचे।
सारी नदियाँ आज सिकुड़ रहीं,
साँसे अपनी भींचे।

पवन भी निर्मल नहीं रह गया,
काले धुआँ को पीकर।
क्या पाएगा कल तू! मानव,
इन सबको ही खोकर।

शिव ने जहर पिया था लेकिन...
एक ही एक ही बार।
पर.. तू हवा में जहर मिला रहा,
निशिदिन बारंबार।

अश्रुपूरित नैना होंगे,
होगी रोगी काया।
जो समय के पहले "न" तू।
"पर्यावरण" बचाया।

सृष्टिकर्ता की "सृष्टि" से,
की है छेड़खानी।
नित नई सुविधा पाने खातिर,
कर दी है "नादानी"

अभी भी समय पकड़ ले मानव!
कर ले तू उपचार।
भूमि पानी और हवा से,
चलता है संसार।

ये तीनों जीवन के भर्ता,
ये ही पालनहार।
प्रकृति में होगी हरियाली,
तब.. होगी जय-जयकार।।

अनमोल सिक्के

प्राचीन से नवीनता का,
अहसास हैं सिक्के।
देश की विकास यात्रा के,
पद्चिह्न हैं सिक्के।

दादी -नानी की संदूक की,
गाथा हैं सिक्के।
सभ्यता और संस्कृति की,
धरोहर हैं सिक्के।

पापा की गुल्लक की,
पहचान हैं सिक्के।
मंदिर से मॉल तक,
सफर करते हैं सिक्के।

हाट बाजार और मेले की,
खनखनाहट हैं सिक्के।
बच्चों की गुल्लक की,
मुस्कान हैं सिक्के।

राजा और रंक के,
भेद हैं सिक्के।
हम सबकी मुस्कुराहट के,
राज हैं सिक्के।

जीवन में धन की कीमत,
बतलाते हैं सिक्के।
बूँद-बूँद से घट भरता है,
सिखाते हैं सिक्के।

अधूरे को पूर्ण,
बनाते हैं सिक्के।
सारी दुनिया इन्हीं से,
"ये अनमोल हैं सिक्के"

संदेश एक अंकुर का

दादी तुम यूँ मुँह मत मोड़ो,
मैं तुम्हारी अंश हूँ।
माँ तुम यूँ छिपकर मत रोओ,
मैं तुम्हारी अंश हूँ।।

क्या हुआ गर दादा-पापा,
समझ नहीं वो पा रहे।
पर दादी और माँ तुम मेरी,
क्यूँ ये सिर को झुका रहे।।

अभी वक्त है मुझे बचालो,
कर दो आज विरोध तुम!
एक नारी से एक नारी को,
देदो यूँ सम्मान तुम।।

नादां दुनिया पुरुष हैं नादां,
जो यूँ बेटी मार रहे।
कल की दुनिया वीरान होगी,
समझ नहीं वो पा रहे।।

पर नारी शक्ति तुम दादी,
माँ दुर्गा तुम काली हो।
स्वअस्तित्व बचालो मुझमें,
तुम घर की रखवाली हो।।

अंतर्मन से अंतर्मन तक,
बोल ये ज्यूँ ही पहुँच गए।
तब एक दादी के निर्णय ने,
सबके दाँत खट्टे किए।।

बची अंश वह जुड़कर माँ से,
परी अवतरित होकर तब।
भैया जब विदेश में बस गए,
बनी सहारा सबकी वह।।

झुठलादी फिर रीत जगत की,
बेटा वंश चलाता है।
पर क्या दूर देश में रहकर,
फर्ज निभा वो पाता है?

झूठी शान और शौकत बस यूँ,
बहुत लोग बतलाते हैं।
अपने कोटर आँसू को वो,
छुप छुपकर ही पीते हैं।।

सीख सको तो सीख लो मानव,
कड़वी इस सच्चाई से।
दिया तले ही रहा अँधेरा,
जग की रीत निभाई से।।

बेटा वंश है बेटी कुछ नहीं,
तोल-मोल नहीं करना है।
बेटी को बचाकर जग में,
ये संसार बचाना है।।

कर्म बनाम भाग्य

हस्त लकीरें देख कर मानव!
मत हो जा तू उदास।
अपने भाग्य को तू खुद लिख ले,
सही कर्मों के साथ।

देख भाग्य को अब तू वहाँ पर,
जिनके नहीं हैं हाथ।
दृढ़ता से वे हाथ बढ़ाए,
अपने कर्म के साथ।

बढ़ तकदीर स्वयं वे लिख लिए,
जो नहीं थी उनके पास।
इस जगत में बने निशां वो,
बन गए एक मिसाल।

पर लेकिन कभी विधि नियंता,
दे देता संताप।
सामने आ जाते तब तेरे!
कई जन्मों के पाप।

उथल पुथल तब होता सब कुछ,
लगता कुछ नहीं हाथ।
तेरे अभिमान और व्यसन से,
परिजन होते उदास।

पर उपकार अभी भी कर ले,
प्राणी मूक-बधिर पर।
खुद के भाग्य को फिर सजाले,
वर्तमान को जीकर।

स्वभाव एक बीज अनेक

कितने बीज धरा पर देखो!
पर सबका है "एक स्वभाव"
प्रकृति सबकी अलग-अलग है,
पर मन का है "एक ही भाव"।

बंद घुटन को सह लेंगे वो,
जब होंगे धरा के "भीत"
नव अंकुर से पल्लवित होकर,
वो बनेंगे "सबके मीत"।

धरती को हरियाली देकर,
खगवृदों को देंगे "नीड़"
प्रदूषण पर प्रहार करके,
पर्यावरण के होंगे "मीत"।

एक बीज से सौ फल होंगे,
सौ से फिर होंगे "हजार"।
पर उपकार सभी पर करके,
पाएँगे वो "जय-जयकार "।

देखो कितनी धरा है सुंदर,
और कितने सुंदर वो "बीज"।
जिनसे आज धरा पर जीवन,
उनसे है "जीवन-संगीत "।

बीज धरा पर बो दो मानव,
वो तो हैं "अपने ही मीत"
धरती पर खुशहाली होगी,
होंठो पर फिर होंगे गीत।

चिकित्सक

इंसा रूप में तुम चिकित्सक,
भगवन से बन जाते हो।
बेबस-लाचारों को जब भी,
जीवन-दान तुम देते हो।

एक मुस्कान से आशा की,
फुलझड़ियाँ जलने लगती हैं।
साँसो की फिर उस बगिया में,
जीवन ज्योति जो जलती है।

सूख रहे थे अधर जो कल तक,
मुस्कान वहाँ फिर आती है।
सही दवा संग उस मरीज की,
ताकत बढ़ती जाती है।

उस चिकित्सक से मरीज का,
रिश्ता मीठा बढ़ता है।
आस्था और विश्वास के कारण,
सही नाम जो पाता है।

यश-नाम इज्जत वो पाता,
आशीषों को पाता है।
मानव धर्म "उपचार" को करके,
सही चिकित्सक बनता है।

निर्वाहक

नव पल्लव नव सृजन की खातिर,
पतझड़ बसंत को लाती है।
प्रकृति तो सहचरी हमारी,
सुंदर "रीति" निभाती है।

दो हांथो में आए जग में,
चार कांधो पर जाते हैं।
अपनेपन के इस रिवाज़ को,
आज भी लोग निभाते हैं।

पर अब बंद करो उस प्रथा को,
जो कन्या को कम आंके।
कहीं दहेज की बेदी पर जो,
जीवित बहू की बलि देदे।

तोड़ दो वे सब परंपराएँ,
सिर को जो झुकाएँ आज।
पगड़ी ले कोई पिता खड़ा क्यूँ?
आँसू खूब बहाए आज।

सृजन के एक पलड़े संग अभी भी,
आज खड़ी जब नारी है।
तो पुरुषत्व का दूजा पलड़ा,
क्यों? समाज पर भारी है!

प्रकृति से सुंदर तुम मानव!
सही निर्वाहक तुम बनो।
रीति रिवाज और परंपरा के,
सही निर्देशक तुम बनो !

कुछ पूरक ये अद्भुत से

रात अमावस जो न होती,
चंदा मान कहाँ से पाता।

पतझड़ पत्ते नहीं गिराती,
नव पल्लव तब कौन उगाता?

बौरें समय पर जो न आतीं,
राग कुहू की कौन सुनाता?

कीचड़ जो न कभी ठहरता,
भला कमल फिर कहाँ पर होता।

लहर अगर जल में न होती,
नदी सागर को कौन मिलाता।

दुख सांसारित जो न होते,
सुख कहाँ परिभाषित होता।

सूर्यास्त न होता यदि तो,
सूर्योदय जल कौन चढ़ाता।

कलियाँ जो न यदि चटकती,
पवन सुवासित कहाँ से होता।

स्वाति नक्षत्र की बूँद न गिरती,
सुंदर मोती कब बन पाता।

रात अँधेरी जो न होती,
दिवस सुनहरा तब कब होता?

प्रश्न आर-पार का

भले देखा हो तुमने!
उस चंदा मामा के आर -पार।
दिखी भी होगी कहानी जैसी
सूत कातती वो नानी सी।
पर.....
नहीं देख सके तुम धरा पर,
एक नारी के अंतस के आर -पार।
क्योंकि वो कांच का टुकड़ा नहीं,
बल्कि संपूर्ण नारी है !
बचपन से जो कभी-कभी,
उठा लेती है मासूम काँधों पर,
जिम्मेदारी का वो भारी बोझ!
पोंछती है आँसू माँ के,
और हाथ बटाती है भाई बहन को पालने में,
क्योकि वहाँ वह एक जिम्मेदार बड़ी लड़की है।
आगे बढ़ती है ब्याहता बन,
संभालती है सारे परिवार को।
करती है सबका काम,
सबको हृदय से खुश रखती है।
पर.. फिर भी नहीं छूता कोई,
आखिर क्यूँ उसके अंतर्मन की गहराई को।
क्या सिर्फ इसलिए कि वो पराए घर से आई है।
नहीं सोचते क्यूँ सब??

कि वो तो इस दहलीज पर,
अपनी अंतिम साँस तक रहेगी।
और .....
एक नारी धर्म को पूरा करेगी।
तभी तो लेती है आर -पार का निर्णय,
चट्टान बन स्वयं की संतान के लिए।
यद्यपि.....
देती है जमाने के अधरों पर मुस्कान,
पर.. खुद के कोटरों में डूबी हुई सी होती है।
फिर भी .....
हृदय के आर -पार नहीं देखता कोई उसके,
क्योकि वह एक नारी है???
हाँ.. होती है सम्मानित वह कहीं -कहीं,
पर..छलना सी भी कहीं छली जाती है।
घर -बाहर पग-पग पर
कब तक ये स्थिति,
यूँ ही बनी रहेगी समाज की।
आखिर कब.....
नारी की सुरक्षा के लिए लड़ाई होगी आर -पार की।

संदेश कमल का सीख लक्ष्मी की

बोला कमल एक दिन मानव से,
कीचड़ को मत देखो!
मुझ पर कीचड़ कैसे नहीं है?
जरा ध्यान से सोचो।

पानी की अमृत बूँदों को,
मैंने प्यार से खींचा।
फिर उन पावन बूँदों से ही,
अपने अंग को सींचा।

सुंदर पावन रूप को मेरे,
देवों ने स्वीकारा।
फिर लक्ष्मी को देखो कैसे?
मुझ पर ही बैठाया।

कमलासन लक्ष्मी कहलाकर,
मधुर-मधुर मुस्काई।
फिर दोनों हांथों से कैसे,
धन बौछार कराई।

अब लक्ष्मी यह सीख हैं देती,
देख कमल को मानव।
कीचड़ में रहकर भी कैसे,
दूर रहा वो मानव।

रिश्वत और भ्रष्टाचारी भी,
रूप हैं कीचड़ जैसे।
इनमें फंसना मत तू मानव!
ये तो दल -दल जैसे।

"अर्थ" के इस दल-दल से मानव,
खुद को तू! बचाले।
सुंदर पावन कर्म रूप में,
फिर मुझको तू पाले।।

अहसास जोड़-तोड़ का

जोड़-तोड़ से चल रही दुनिया,
जोड़-तोड़ ही भारी है।
बिना जोड़-तोड़ के देखो,
कहीं बड़ी लाचारी है।

भूखे पेट जो सो जाते हैं,
रोटी वहाँ बड़ी मँहगी है।
तन पर वसन नहीं हैं जिनके,
चादर वहाँ बड़ी मँहगी है।

टिम-टिम दीपक भी नहीं जल रहा,
रोशनी वहाँ बड़ी मँहगी है।
अँधेरी गलियाँ हैं रोतीं,
लौ भी वहाँ पर हारी है।

पुस्तक की क्या बात करें हम,
कलम जहाँ पर मँहगी है।
शिक्षा भी वहाँ टिक न पाती,
जहाँ हाँथ नहीं रोटी है।

कचरे में से चुनकर भोजन,
क्षुधा को जो मिटाते हैं।
दुनिया की इस चकाचौंध को,
प्रश्न खड़ा वो करते हैं।

पूनम का जहाँ चाँद न होता,
रोज अमावस होती है।
बेबसी और लाचारी में,
हर धड़कन रोज सिसकती है।

करो! अहसास अब जोड़-तोड़ का,
क्यूँ अब तक लाचारी है।
हैं विकासशील जो हम फिर तो!
फिर क्यूँ ये लाचारी है।

अनुपम छबि

देख सखी री! कितना सुंदर,
इन्द्रधनुष वो लग रहा।
अनुपम दर्पण "सरोवर" में,
अपनी छबि निहार रहा।

उस "सर" की तलहटी में देखो,
मरकत जैसा दमक रहा।
अपने सतरंगों के संग वो,
अद्भुत छटा बिखेर रहा।

खेल-खेल में जैसे वो तो,
मछलियों को भी लुभा रहा।
"पुष्कर" की शांत सी लहरों पर,
मंद-मंद मुस्कुरा रहा।

देर न करो तुम आओ सखी री,
क्षणिक में वो तो जाता है।
इस बारिश के मौसम में ही,
कभी दर्शन देने आता है।

सबको खूब लुभाकर वो तो,
मानस को खुश करता है।
क्या बूढ़े क्या बच्चे सबका,
मन बहलाके जाता है।

आस के दीप

नहीं फँसूगी दुविधा में मैं!
पल में निर्णय ले लूँगी।
कान्हा को मैं संग में रखकर,
मन विश्वास से भर लूँगी।

जो पतवार यदि ढीली हुई,
उस पर पकड़ बना लूँगी।
बीच भंवर अंदेशा पाकर,
बचकर कूल मैं पहुँचूगी।

अपनी संतानों की खातिर,
सुंदर राह सजा लूँगी।
पग के कंटक सारे चुनकर,
दूर उन्हें मैं कर लूँगी।

चिड़ियों को दाना देकर के,
दूर मुसीबत कर लूँगी।
औरों को खुशियाँ देकर के,
प्यार-स्नेह मैं पा लूँगी।

राखी का मैं मान रखूँगी,
रंगोली सजा लूँगी।
घर-बाहर और चौखट पर मैं,
"आस के दीप" जला लूँगी।

विनय

एक विनय करती हूँ सबसे,
संस्कारों के पुष्प खिलादो।
संतानों को खुशियाँ देने,
नैतिकता के सुमन भी देदो।

चमकदार दीवार ढहें जो,
उनसे उनको आज बचालो।
सही-गलत का फर्क बताकर,
सीख सयानी समय पर देदो।

घुटन कहीं भी लगे न उनको,
कुछ बंधन ढीले भी कर दो।
दहलीजों की मर्यादा का,
सुंदर पाठ उन्हें समझादो।

संस्कारों की नींव पर सारे,
खुशियों के तुम महल सजालो।
घर-परिवार समाज रहे सुंदर,
सारे मिलकर जतन ये कर लो।

आज वक्त की माँग यही है,
सुचरित्र को दृढ़ता देदो।
संस्कारों और नैतिकता को,
पीढ़ी को हस्तांतरित कर दो।

कृतज्ञता

एहसानमंद रहो उस कृषक के,
जिसने अन्न उगाया।
सबकी क्षुधा मिटाने खातिर,
दिन भर हल चलाया।

श्रमबिंदु से फसल सींचकर,
खेती को लहलहाया।
श्रमबिंदु से मीठा होकर,
घर-घर अन्न है आया।

उपकारी नदियाँ धरती पर,
जिनने प्यास बुझाई।
परोपकारी हैं पेड़ जगत में,
जिनसे साँस सभी ने पाई।

शिक्षक बंधु मात-पिता का,
आभार मान लो दिल से।
पग-पग पर ठोकर से बचे जो,
इनके सद्कर्मों से।

रहो कृतज्ञ मानव तुम हरदम,
अपने सुंदर तन के।
प्रारब्धों से मिला जो तुमको,
मानव जीवन पाके।

नसीहत

ममता के जीवित आँचल से,
मत मातृत्व को खींचो।
भाई-भाई के कांधों से,
मत भ्रातृत्व को तोड़ो।

बहन-भाई के रिश्ते में
गाँठ कोई न डालो।
पिता-पुत्र में दूरी हो जाए,
बोल न ऐसे बोलो।

ननद-भावज के मीठे रिश्ते,
कड़वाहट न घोलो।
सुख-दुख के साथी हैं पड़ोसी,
वहाँ जहर न घोलो।

गुरु शिष्य के आदर्शों को,
तर्क से न तुम तोड़ो।
बचपन के जो मित्र हैं साथी,
उनको तुम मत भूलो।

गुंबद मंजिल हिला-हिलाकर,
इमारत मत तोड़ो।
मानव जीवन तुमने पाया,
रिश्तों को समझ लो।

इंसा हो इंसानी रिश्ते,
आगे बढ़कर जोड़ो।
मानव का तुम मान बढ़ाकर,
हर आदर्श को गढ़ लो।

चेतावनी नियति की

अंबर को चूमती सी इठलाती हुई,
शाख से कहा सूरज ने।
मत इतरा अपनी ऊँचाई पर,
कि तू धरा से कितनी ऊपर है।

सच तो यह है कि तू सोच,
जरा उस जड़ के बारे में।
जो मृदा की गहराई में घुटती हुई,
तुझे संभाले खड़ी है।

इतरा मत अपनी लहलहाती दुनिया पर,
किस डाल पर फूल -फल होगा,
क्योंकि ये तुझे भी नहीं पता,
ये तो नियति का खेल बताएगा।

कि अबके बरस महका चमन होगा,
या बहारें फिज़ा होगी।
यह तो आने वाला,
कल ही बताएगा।

फिर भला मानव! तू भी क्यों?
आखिर क्यों इतराता है।
और बार -बार बीती गलती को,
दोहराता है आखिर क्यों?

क्यों नहीं सुधारता स्वयं को,
भूत से सीख.....
क्यों नहीं संभालता वर्तमान को,
भविष्य की खातिर।

क्या? सिर्फ भाग्य ही सब कुछ है,
कर्म कुछ नहीं।
जबकि तूने कई बार देखा है,
शायद महसूस भी किया है।

कि लाख थाली हो भोजन की सामने,
पर खाने का नसीब न हो तो।
सिर्फ पानी पी-पीकर ही,
भूखे पेट ही सोना पड़ता है।

जब अनेकों बार इस स्थिति को देखा है,
तो क्यूँ नहीं संभलता मानव!
आखिर क्यूँ? अपनी सुंदर तस्वीर पर,
काली स्याही फिराना चाहता है।

है वक्त अभी भी सचेत हो जा मानव!
और.. ईश्वरीय कृपा को सहेज ले।
वरना कुछ नहीं होता बागे चमन में,
सूखा पड़ने पर वर्षा के बाद।

मंजिल का द्वार क्षितिज के पार

जब जीवन पथ का द्वार खुला,
काँटो का भी अंबार मिला।
पर झिलमिल-झिलमिल तारों संग,
चंदा का भी एक उजास मिला।

तब राह बनी धीरे-धीरे,
और पाँव बढ़े आगे-आगे।
कुछ बेगाने अपने हुए
कुछ अपने भी तब गैर दिखे।

जब अपना साया साथ चला,
तम घोर निशा का दूर हुआ।
जब अरुणोदय संग द्वार खुला,
तब सपनों का एक महल बुना।

कर्तव्य की डोर निभाए हम,
चट्टानों से टकराए हम।
तब बीच भंवर की कश्ती भी,
तूफां में पार लगाए हम।

ये दुनिया कुछ भी कहती रही,
बस बात तो दिल की माने हम।
सही कर्म को करके आगे हम,
फिर सबको मौन कराए हम।

इस जीवन पथ के राही हम,
हर खुशी को आखिर पाए हम,
फिर दूर क्षितिज के पार सही,
अपनी मंजिल को पाए हम।

अरे! स्वार्थी मानव

सृष्टिकर्ता की सृष्टि का,
तूने विघटन कर दिया।
खड़ी करीं "दीवारें" तूने!
सब कुछ ही तो बाँट लिया।

धरती बाँटी नदियाँ बाँटी,
अंबर को भी बाँट लिया।
ताज पहनने की खातिर ही,
खुद से सौदा कर लिया।

भौतिकता की होड़ लगी है,
धरा से देखो अंतरिक्ष तक।
ताकत अपनी सब बता रहे,
सागर की गहराई तक।

अमन शांति चैन को तूने,
दीवारों से ढहा दिया।
मानवता और नैतिकता को,
दीवारों में कैद किया।

सृष्टि की नैसर्गिकता को भी,
अपने कर से मिटा दिया।
प्रकृति थी एक सुंदर रमणी,
उससे भी खिलवाड़ किया।

जबकि पवन और चंदा सूरज,
आज तलक भी एक हैं।
सृष्टिकर्ता की दृष्टि में,
सारे मानव एक हैं।

अरे! स्वार्थी मानव तूने!
अपने हाथों क्या किया?
मानवता का कर बँटवारा,
रे! मानव ये क्या किया?

मानव-धर्म

सच्चा फर्ज़ निभादो इंसा,
औरों को सुख देकर के।
सूखे अधरों को जल देकर,
मुस्कानों को लाकर के।

बहते आँसू तुम पोंछ दो,
अपने हांथ बढ़ाकर के।
दूजों के दुख थोड़ा सुन लो,
अपना समय तुम देकर के।

धन-दौलत न दे सको अगर तो,
कर से करो भलाई तुम!
औरों को जब पड़े जरूरत,
मददगार बन जाओ तुम!

बिना स्वार्थ कर दिया जो कभी भी,
एक काम तुमने इंसा।
सफल हो गया दिन तुम्हारा,
उसी दिन उसी क्षण तब इंसा।

इस धरती पर ईश कृपा से,
सुंदर रूप में तुम इंसा।
धन्य-धन्य हैं भाग्य तुम्हारे,
"मानव" बने जो तुम इंसा।

कीमत हाथों की

केवल नियति नहीं है मानव,
सब कुछ कर्म का लेखा है।
पैरों से चलता हर कोई,
पर हाथ अलग कुछ करता है।

तूली पकड़ जब हाथ है चलता,
जीवन दर्शन होता है।
कलम लेखनी की ताकत को,
जनमानस ही पढ़ता है।

अनगढ़ माटी रूप है पाती,
दसों अंगुलियाँ चलने पर।
वाद्य भी सब झंकृत हो जाते,
वरद हस्त मिल जाने पर।

टूटी साँसे लौट हैं आतीं
सही हाथ मिल जाने पर।
जीवन के रंग भरते रहते,
हस्त लेख सही होने पर।

ऊँचाई पर वही पहुँचता,
जो कोई हाथ चलाता है।
वरना पैरों रहते हुए भी,
मानव वहीं रह जाता है।

श्रमबिंदु और हाथ के चलते,
भाग्य लिखा फिर जाता है।
पैरों से चलता हर कोई,
पर हाथ अलग कुछ करता है।

हाथों की कीमत है मानव,
वही नियति का लेखा है।
सच्चे कर्म तू! कर ले मानव,
तभी भाग्य कुछ देता है।

आवाज मेरी कलम की

कलम लेखनी में है ताकत,
यह दुनिया में सबने माना।
मैंने भी इस कलम के बल पर,
जीवन रंग का बुना है ताना।

ऊबड़-खाबड़ मैदानों पर,
जैसे पर्वत का बन जाना।
गर्भ समुद्र में भरे पड़े हैं,
जैसे रत्नों के है खाना।

नन्हें की मुस्कान में देखो,
सारी दुनिया का छुप जाना।
माँ की आँखों में तुम देखो,
इस सृष्टि का ताना -बाना।

बहना की राखी की कीमत,
किसी कलाई का सूना होना।
किसी भाई की शादी पर जब,
पहुँच न पाए प्यारी बहना।

जीवन में सुख दुःख का होना,
खिली धूप और छाँव का होना।
कभी पूनम तो अमावस होना,
पतझड़ और बसंत का होना।

जीवन मरण का चक्कर देखो,
कहीं फूल तो कली का होना।
यश-अपयश के रंग को देखो,
राजा-रंक-फकीर का होना।

नन्हें कदमों की आहट को,
जिनने समय पर है पहचाना।
उन्हीं ने इस सारे जगत को,
दे दिया इक महल खजाना।

शिक्षा और कलम से मिलकर,
बुना गया जो ताना -बाना।
कलम लेखनी में है ताकत,
यह सारी दुनिया ने माना।

नया सबेरा

जब "नया सबेरा" होता है,
सूनी गलियाँ मुस्काती हैं।
जब गोरी सिर पर घड़े लिए,
रुन -झुन पनघट से आती है।

"नई" स्वर्णिम किरणें आते ही,
चिड़ियाँ भी गीत सुनाती हैं।
"नूतन" प्रभाकर आने से,
कलियाँ प्रसून बन जाती हैं।

जब दिवस भोर "नई" होती है,
मानुष में फुर्ती आती है।
बीते कल की बीती बातें,
"नई "राह जगत को देती हैं।

तब बूढ़े क्या और बच्चे क्या,
सबकी सुस्ती तब भगती है।
सब कामों में अपने लगते,
"नई सुबह" नया रंग लाती है।

जब "नया-नया"दिखता सब कुछ,
तब प्रकृति गीत सुनाती है।
तब इस सृष्टि के आँगन में,
"नई खुशियाँ" दस्तक देतीं हैं।

समर्पण

शीश झुकाती हूँ उस परम शक्ति को,
जिसने इस सुंदर प्रकृति को बनाया।

नमन करती हूँ उन स्वर्णिम किरणों को,
जिनने जहाँ को रोशन बनाया।

प्यार करती हूँ उन पक्षियों को,
जिन्होंने प्रभात का संदेश सुनाया।

निहारती हूँ उन हरे -भरे पेड़ों को,
जिन्होंने परोपकार करना सिखाया।

देखती हूँ उन पर्वतों को,
जिन्होंने ऊँचा उठना सिखाया।

प्रणाम करती हूँ उन नदियों को,
जिन्होंने जगत की प्यास को बुझाया।

स्पर्श करती हूँ उस सुंदर सुकोमल गुलाब को,
जिसने काँटों में रहकर मुस्कुराना सिखाया।

चूमती हूँ उन नन्हें गालों को,
जिसकी मुस्कान ने सबके दु:खों को भगाया।

याद करती हूँ उन "कृष्ण" को,
जिन्होंने मित्र सुदामा के चरणों को अपने आँसुओं से धुलाया।

आदर देती हूँ उन मात-पिता को,
जिन्होंने ये सुंदर संसार दिखाया।

माथे लगाती हूँ बैलाडीला की उस पावन माटी को,
जिसने मेरे परिवार की खुशियों को सजाया।

नाम - श्रीमती सीता गुप्ता

पति - श्री आर. के. गुप्ता

माता - श्रीमती त्रिवेणी सरावगी

पिता - स्व.श्री ललता प्रसाद सरावगी

जन्म -२५/०५/ १९५७ जबलपुर (म. प्र.)

शिक्षा -एम. ए. (हिन्दी) एम. ए. (समाज शास्त्र) बी. एड.

पता - सीता गुप्ता/ आर. के. गुप्ता, जिप्सी १, गणपति विहार, पोटिया कला रोड, 'दुर्ग' जिला दुर्ग (छ.ग.)

मो. नं. - 08839445051

ई. मेल. - sitarkgupta @gmail.com

विधा - काव्य एवं गद्य लेखन

कार्यक्षेत्र - सेवा निवृत वरि. शिक्षिका एन.एम.डी.सी.लिमिटेड (बी.आई.ओ.पी.सी.से.स्कूल) किरन्दुल (छ. ग.)

प्रकाशन - ओस की बूँदें, गूँज हृदय की, स्पर्श नन्हों का, शब्द कलश (४ काव्य संग्रह), बैलाडीला किरन्दुल कॉम्प्लेक्स की सर्जना पत्रिका में रचनाएँ प्रकाशित, लक्ष्मी पब्लिकेशन की कुछ शिक्षक कवि-२ में रचना प्रकाशित, स्त्री तुम सशक्त हो, नारी तुम केवल श्रद्धा हो, रंग बरसे, स्त्री तुम सृजक हो वुमन आवाज आदि(अनेक साझा संग्रह) एवं अन्य पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित, विशेष -आपात काल सृजन फुलवारी (काव्य संग्रह) माँ एवं मुसीबते तो आएंगी मगर डरने का नई(साझा संग्रह)

सम्मान - वुमन आवाज २०१८, हिन्दी कलमकार सम्मान २०१९, साहित्यकार स्वाभिमान सम्मान २०१९ एवं अंतरा शब्दशक्ति गौरव सम्मान २०१९, शब्द कोविद सम्मान २०१९, (बैलाडीला क्षेत्र में इंटुक यूनियन द्वारा 'बेस्ट टीचर्स अवार्ड', अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष २०१६ में बैलाडीला एस.के.एम.एस.यूनियन द्वारा विशेष सम्मान, विशेष- आपात काल में सृजन पर अंतरा शब्दशक्ति द्वारा कलम के सिपाही सम्मान २०२०

उपलब्धि - पर्यावरण स्लोगन प्रथम पुरस्कृत बोर्ड नाम के साथ बैलाडीला की मुख्य सड़क पर आज भी स्थापित है 'एक बूँद से सजता है सीप में मोती'

उद्देश्य - हृदय की गंग धार से सृजित अपनी रचनाओं के माध्यम से जन मानस को सकारात्मक सोच के साथ परिपक्वता देना चाहती हूँ, जिससे घर-परिवार समाज व देश उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकें।

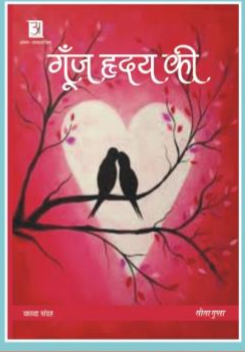

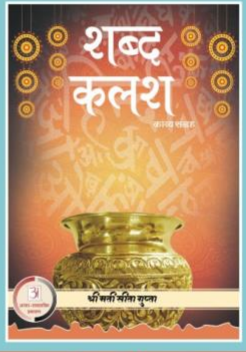

हिन्द व हिन्दी का सम्मान, है प्रमाण देशभक्ति का.. आइए करें सृजन, शब्द से शक्ति का...

15, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी, जिला - बालाघाट (म.प्र.), पिन 481331, मो. - 9424765259, ईमेल - antrashabdshakti@gmail.com

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति

अन्तरा शब्दशक्ति के लिंक्स

Website:- www.antrashabdshakti.com

Facebook page:- https://www.facebook.com/antrashabdshakti/

Fecbook group:- https://www.facebook.com/groups/antraashabdshakti/

978-93-5372-243-2

मूल्य 250/-